समयसार, गाथा ५० से ५५, संस्थान तक आया है।

क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है। इस शरीर का जो आकार-संस्थान है न, वह जड़ की पर्याय है। द्रव्य-पदार्थ उसका कोई प्रदेशत्व आदि गुण है, उसकी यह आकृति, उसकी यह पर्याय है। ये द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों भिन्न हैं। आत्मा में से ये तीनों भिन्न हैं—पुद्गल है, जड़द्रव्य, उसका गुण और उसकी यह पर्याय-आकार-संस्थान। आहाहा! यह आत्मा से भिन्न है। कब? अनुभव होवे तब। आहाहा! भगवान आत्मा द्रव्य है, उसमें आनन्द ज्ञान आदि गुण हैं, उसकी अनुभूति हो-उसके द्रव्यस्वभाव के सन्मुख होकर आनन्द का अनुभव हो, वह अनुभूति वह पर्याय है। आत्मा द्रव्य है, उसके ज्ञान आनन्द आदि गुण हैं, उसका अनुभव है, वह पर्याय है। वह पर्याय, जब अनुभूति हो, तब उस जड़ के आकार की पर्याय भिन्न है - ऐसा जानने में आता है। आहा! ऐसी बात है। समझ में आया? ये छह संस्थान हैं। समुच्चय ले लेते हैं। **समचतुरस्त्र, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामन अथवा हुंडक संस्थान है, वह सर्व ही जीव का नहीं है...**

भगवान! आहाहा! इस शरीर के आकार नाक के और इन्द्रिय के, आहाहा! ये सब आकार जड़ की पर्याय है, कहते हैं। आहाहा! शरीर के आकार दिखते हैं न? आहा! पीछे

शरीर के आकार, ऐसे सामने के आकार ये, सब जड़ की पर्याय है। ये अजीव की पुद्गल द्रव्य के गुण की पर्याय है। आहाहा! इससे भगवान आत्मा भिन्न है। ऐसा कब कहा जाये? वस्तु भगवान आत्मा है, उससे तो वे भिन्न हैं परन्तु वे भिन्न कब कहलाये? आहाहा! भगवान आत्मा अन्तरस्वभाव शुद्ध चैतन्यघन की पर्याय में अनुभूति हो, तब उस अनुभूति से भिन्न है - ऐसा भेदज्ञान सच्चा होता है। सूक्ष्म बात है भाई! आहाहा! ये शरीर के आकार दिखते हैं न, भिन्न-भिन्न आकार, यह... यह... यह... ऐसा पीछे सब ऐसे ये सब जड़ के आकार हैं। आहाहा! ये जड़ के आकार उस जड़ के गुण की पर्याय है। यह भगवान आत्मा का गुण भी नहीं, उसकी पर्याय भी नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, उसके द्रव्य और गुण को अनुसरण कर जो निर्मल वीतरागी अनुभूति पर्याय होती है, तब उसे उससे यह भिन्न है - ऐसा ज्ञात होता है।

एक बोल है। समुच्चय कर दिया।

दूसरा, **संहनन** (आठवाँ बोल) है? संहनन अर्थात् हड्डियों की मजबूताई, वह भी जड़गुण की एक पर्याय है। वह हड्डियों की मजूबताई छह प्रकार की है। आहाहा! वह भी एक जड़ गुण की आकृति की उस प्रकार की पर्याय है तो वह जड़ द्रव्य, जड़ गुण और जड़ की पर्याय। आहाहा! उससे भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न हैं। ऐसी बात है। वह द्रव्य चैतन्य भगवान अन्दर में अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि गुण... कल आया था न, दोपहर को, नहीं? चैतन्यलोक; उसमें अनन्त प्रकार के गुण दर्शनीय हैं, वे देखनेयोग्य हैं, उन्हें देखे, आहाहा! भगवान आत्मा में अनन्त-अनन्त प्रकार के गुण हैं, उन गुण की पर्याय-अनुभूति, वह उनकी पर्याय कहलाती है। आहाहा! जिसकी—त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप भगवान आनन्द का सागर आत्मा, उसके सन्मुख होकर जो अनुभूति—सम्यग्दर्शन और अनुभव हो, उसे यहाँ धर्म कहते हैं। उस धर्म की पर्याय से जड़ की पर्याय भिन्न है। आहाहा! इतनी शर्तें, इतनी।

भगवान! मार्ग ऐसा है। यह अनन्त काल से भटकता है, दुःखी है, दुःखी। आहाहा! बाहर के पदार्थों का उत्साह-हर्ष, वह मिथ्या भ्रम है। अन्तरपदार्थ को अन्तर आनन्द की विषमयता ऐसा जो आश्चर्यकारी चैतन्य चमत्कार, उसका अवलम्बन करके जो अनुभूति हो, उसे यहाँ धर्म कहते हैं, उसे यहाँ जीवद्रव्य की पर्याय कहते हैं। उसे-उस

अनुभूति से जड़ की पर्याय संहनन आदि भिन्न है। कोई कहता है कि व्रजनाराचसंहनन हो तो केवलज्ञान होता है।

श्रोता : इनकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं ? ऐसा नहीं, भाई! वह हो, परन्तु उसके कारण केवलज्ञान होता है – ऐसा नहीं। क्योंकि ज्ञान की पर्याय से संहनन की / मजबूताई की पर्याय अत्यन्त भिन्न है। उस भिन्न के कारण यहाँ केवलज्ञान हो, ऐसा स्वरूप नहीं है। आहाहा! केवलज्ञान तो भगवान आत्मा, चैतन्य के चमत्कार के स्वभाव से अद्भुत से अद्भुत स्वभाव से भरपूर, उसके अवलम्बन से केवलज्ञान हो, वह आत्मा की पर्याय है। आत्मा द्रव्य है, ज्ञान गुण है, केवलज्ञान उसकी पर्याय है। उस पर्याय से यह जड़ की पर्याय भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात है। सह समुच्चय लिया है।

अब यहाँ नौवाँ बोल लेना है। **जो प्रीतिरूप राग है,...** आहाहा! जो अन्दर में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव, पंच परमेष्ठी के स्मरण का भाव, वह सब शुभराग है, क्योंकि वह राग, परद्रव्य के लक्ष्य से होता है; वह आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा! चाहे तो पंच महाव्रत का राग हो, चाहे तो पर की दया पालने का राग हो परन्तु वह राग है, वह आत्मा के स्वरूप की हिंसा है। आहा! वह प्रीतिरूप राग, शरीर का प्रेम हो या स्त्री का प्रेम हो या इज्जत का प्रेम हो या देव-गुरु और शास्त्र का प्रेम हो, वह सब राग है। आहाहा! भगवान आत्मा के आनन्द का प्रेम छोड़कर, जो इस पर के प्रेम में लग जाता है... आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! बात तो अलग प्रकार है, प्रभु! आहाहा!

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु में जितना पर के संग से राग होता है; चाहे तो देव-गुरु और शास्त्र के प्रति प्रेम, परन्तु वह राग है। आहाहा! वह राग, वह सब ही जीव का नहीं है। भगवान आत्मा में वह राग नहीं है। आहाहा! जो राग का विकल्प है; चाहे तो गुणी भगवान आत्मा और अनन्त प्रकार के गुण-ऐसा भेद का विकल्प उठे, वह भी राग है, वह राग जीव में नहीं है। आहाहा! है ? **क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय है इसलिए....** आहाहा! वह राग है, वह पुद्गलद्रव्य की पर्यायमय होने से, पुद्गलद्रव्य के साथ अभेद है। आहाहा! जगत को ऐसी बात कठिन पड़ती है।

भगवान आत्मा... वह राग की पुद्गलमय पर्याय है, पर की दया का भाव, वह भी राग है। आहाहा! वह राग तो पुद्गलपरिणाममय है - ऐसा कहते हैं। है तो इसकी पर्याय में, परन्तु कोई ऐसा इसका स्वभाव नहीं है। जीव के अनन्त गुण हैं, भगवान आत्मा में अनन्तानन्त, अनन्तानन्त गुने गुण हैं परन्तु कोई गुण विकार करे, ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! इसलिए भगवान आत्मा अनन्त गुण का सागर प्रभु (है), उसकी परिणति जो अनुभूति... आहाहा! वह द्रव्य वस्तु और उसके अनन्त गुण और उन्हें अनुसरण कर अनुभव होना—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी अनुभूति होना, उस अनुभूति से राग का पुद्गलमय परिणामभाव भिन्न है। आहाहा!

अब यह कहाँ लोगों को जाना है। है? आहाहा! प्रभु मार्ग अलग है। भव के अन्त का... भव के भव, राग तो भवस्वरूप है-राग तो भवस्वरूप है, चाहे तो शुभराग हो। समझ में आया? आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव हो, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव हो परन्तु वह राग है, वह संसार है; वह भगवान आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा तो मुक्तस्वरूप है। मुक्तस्वरूप का राग नहीं होता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! आहाहा!

वह राग **वह पुद्गलपरिणाममय है इसलिए...** भाषा देखो! एक ओर राग आत्मा की पर्याय है, ऐसा कहे। वह इसमें परिणमन होता है, इतना ज्ञान कराने के लिये। परन्तु जब द्रव्यस्वभाव का वर्णन यहाँ हो, तब वह पुद्गलपरिणाममय राग, आहाहा! भगवान अरिहन्तदेव, पंच परमेष्ठी या गुरु, उनके प्रति भक्ति का भाव, राग है। आहाहा! वह राग **पुद्गलपरिणाममय है इसलिए...** उसका अभेदपना जड़ के साथ है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पुद्गलपरिणाममय कहा न? पुद्गल (परिणामवाला) भी नहीं; पुद्गलपरिणाममय। आहाहा! अरे! इसने इसके तत्त्व की बात सुनी नहीं। अन्दर कौन है प्रभु अन्दर? आहाहा! सच्चिदानन्दस्वरूप सत् शाश्वत् ज्ञानानन्द आदि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका जो अनुभव होना... आहाहा! उसके सन्मुख होकर; निमित्त और राग और पर्याय से विमुख होकर... वस्तु ऐसी है प्रभु! सूक्ष्म पड़े परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा! आहाहा!

निमित्त संयोगी चीज़ देव-गुरु-शास्त्र के प्रति राग, उस निमित्त से लक्ष्य हटाकर, राग से (लक्ष्य) उठाकर और राग को जाननेवाली ज्ञान की वर्तमान पर्याय है, उससे दृष्टि उठाकर, चैतन्यस्वभाव चैतन्य-चिन्तामणि प्रभु के ओर की दृष्टि करना। जिस पर्याय की दृष्टि राग पर और पर के ऊपर है, उस पर्याय को अन्तर में भगवान के दर्शन में ले जाना। आहाहा! दर्शनीय जो अवलोकनीय है, उसमें ले जाना। आहाहा! बाहर की चीज़ दर्शनीय और अवलोकनीय नहीं है। आहाहा! वास्तव में भगवान आत्मा एक समय में अनन्त-अनन्त गुण भिन्न-भिन्न प्रकार के, उन सबको देखने योग्य तो यह चीज़ है, अवलोकन करनेयोग्य यह चीज़ है। इस चीज़ को दर्शनीय करके अवलोकन किया, तब पर्याय में अनुभूति हुई। आहाहा! तब पर्याय में आनन्द की दशा हुई। पर्याय में... पर्याय अर्थात् अवस्था में अनन्त गुण की जितनी संख्या है, उतनी पर्याय की व्यक्तता-अंश की व्यक्तता प्रगट हुई, उसे यहाँ अनुभूति कहते हैं। आहाहा! ऐसी अनुभूति से वे राग के परिणाम पुद्गलपरिणाममय, इस अनुभूतिमय भगवान आत्मा से भिन्न है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

श्रोता : बहुत सुन्दर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। वस्तु, यह वास्तु इसे कहते हैं। राग के-पुद्गल के परिणाम जानकर, आहाहा! यहाँ तो बाहर का अप्रशस्त राग है... एक बार रात्रि में नहीं कहा था, रामजीभाई ने बहुत कहा था। वस्त्र पहनना, नहना-धोना, ऐसा करना, यह सब पाप है। हैं?

श्रोता : खाना-पीना यह पाप?

पूज्य गुरुदेवश्री : खाने-पीने का भाव, यह पाप। संसार के लिये संसारी तो स्वयं शरीर के पोषण के लिये खाता है। आहाहा! यह सबेरे नहाना, कपड़े धोना और धुले हुए ठीक से पहनना, ये सब भाव पाप है। आहाहा! यह तो भिन्न चीज़ है, परन्तु देव-गुरु और शास्त्र की भक्ति का भाव, वह प्रीतिरूप राग है। आहाहा! उससे मुझे लाभ होगा - ऐसी मान्यता तो मिथ्यात्व है। आहाहा! वे पुद्गलमय परिणाम है, वे प्रभु के नहीं। आहाहा! इस चैतन्यभगवान के वे परिणाम नहीं, क्योंकि चैतन्य में अनन्त... अनन्त... अनन्त... भरे हैं, तथापि कोई एक गुण विकार करे-परिणमे—ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! अनन्त...

अनन्त... अनन्त का पार नहीं, प्रभु! तेरे गुण की संख्या का (पार नहीं)। आहाहा! इतने अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त से गुणा करो अनन्त बार तो भी पार नहीं, इतने गुण हैं, तथापि उन गुणों का अन्त नहीं इतने गुण में से कोई गुण विकार करे या राग करे - ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ये सब गुण निर्मल हैं; इसलिए निर्मल पर्याय को करे - ऐसा कहना भी व्यवहार है। वह पर्याय निर्मल पर्याय को करे, इसका नाम यथार्थ है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है बापू! वीतरागमार्ग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ प्रभु का पन्थ जगत् से कोई निराला है। कितने ही बाहर से-दया, दान, आदि से धर्म मानते हैं तो कितने ही भक्ति से-देव-गुरु-शास्त्र से मानते हैं। सब एक प्रकार है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। इस शब्द में तो बहुत भरा है। **प्रीतिरूप राग...** जिसे भगवान आनन्द के नाथ का प्रेम नहीं है, उसे पर के प्रति प्रेम है, उस प्रेम का जो राग है, वह दुःखरूप है। आहाहा! चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग हो, वह भी दुःखरूप है। आहाहा! वह प्रीतिरूप राग है, परन्तु है अवश्य, अस्तित्व है; आत्मा में नहीं, इसलिए नहीं - ऐसा नहीं है। आहाहा! आत्मा में किसी गुण से नहीं, इसलिए नहीं-ऐसा नहीं है। आहाहा! **प्रीतिरूप राग है...** वह राग है, वह। आहाहा! राग का विकल्प सूक्ष्म है। आहाहा! प्रभु! तेरी पर्याय में राग होता है। है परन्तु वह है पुद्गल का परिणाम - ऐसा कहते हैं। वह तेरी पर्याय नहीं। आहाहा! तेरी पर्याय... अनन्त गुण में से कोई गुण राग करे - ऐसा गुण नहीं है, फिर पर्याय तेरी कहाँ से आयी? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा अनन्त गुण का सागर.... श्रीमद् में भी आया न! 'मूल मारग सांभलो जिननो रे करि वृत्ति अखंड सन्मुख' वृत्ति अर्थात् परिणति वर्तमान जो इसकी है, उसे अखण्ड द्रव्य पर वृत्ति कर दे। आहाहा! मूल मार्ग वीतराग का यह अनादि सनातन है। करि वृत्ति अर्थात् परिणति, जो वर्तमान है, उसे अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि कर दे। आहाहा! तो राग के परिणाम पुद्गलमय हैं, वे भिन्न पड़ जायेंगे। आहाहा! इसका भी अर्थ नहीं समझते। उन्हें ऐसा कि यह भक्ति करना, यह गुरु की भक्ति करना, (इससे) धर्म हो जायेगा... धूल में भी नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? धूल में भी नहीं होगा अर्थात्

क्या कहा ? इसे पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं बँधेगा। क्योंकि इस राग से लाभ होता है - ऐसा माने, वह तो मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व में तो पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं है; वहाँ तो पापानुबन्धी पुण्य है। है पुण्य, राग है वह, आहाहा! परन्तु मुझे उससे लाभ होगा - ऐसा जो मिथ्यात्व का महातीव्र पाप, उस पाप के पोषण में जो राग का पुण्य है, वह तो पापानुबन्धी पुण्य है। हीराभाई नहीं आये ? नहीं आये। समझ में आया ? आहाहा!

प्रीतिरूप राग है,... प्रीतिरूप राग है। है, आहाहा! **वह सर्व ही जीव का नहीं है...** असंख्य प्रकार का राग है। राग के बहुत प्रकार हैं। कोई गुण-गुणी के भेद का राग; कोई देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग; कोई दया का राग; कोई सत्य बोलने का राग; कोई शरीर से ब्रह्मचर्य पालने का राग; ऐसे राग के बहुत प्रकार हैं। आहाहा! **वह सर्व ही जीव का नहीं है...** राग के जितने असंख्य प्रकार हों, वे सब भगवान आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! **क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय है इसलिए...** वे तो पुद्गलद्रव्य की पर्याय है, कहते हैं। आहाहा!

एक जगह वापस ऐसा भी लिया कि कर्म की पर्याय होती है, वह कोई गुण नहीं, वह वहाँ होती है, पर्याय में होती है - ऐसा लिखा है, चिद्विलास में (लिखा है)। जो राग होता है, वह पुद्गलकर्म की पर्याय होती है, कर्म की पर्याय, कर्म की पर्याय होती है, वह कोई पुद्गल में गुण नहीं कि जिससे (वह) पर्याय हो। पर्याय स्वतन्त्र होती है। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह पुद्गलद्रव्य अर्थात् जड़ पदार्थ है, उसका गुण है, विकार होने के योग्य, उसमें विकार परिणाम (स्वयं से) होते हैं। आहाहा! यहाँ तो गुण नहीं उसे -ऐसा सिद्ध करना है वापस। यह क्या कहा समझ में आया ? कर्म की पर्याय में जो राग होता है, तो उस द्रव्य में कोई ऐसा गुण नहीं कि कर्म की पर्यायरूप हो। पर्याय का ही उसका ऐसा स्वभाव है। पण्डितजी! सूक्ष्म बात है भाई! आहाहा! जैसे आत्मद्रव्य में कोई ऐसा गुण नहीं कि विकार हो; वैसे पुद्गल में कोई गुण नहीं कि कर्मरूपी पर्याय हो। सूक्ष्म बात है बापू!

यह कोई मार्ग... आहाहा! और यह समझे बिना मर जानेवाला है चौरासी के अवतार में गोते खाकर-पशु में। एक तो बनिये धन्धे के कारण निवृत्त नहीं। पूरे दिन पाप

के धन्धे बाईस घण्टे ! स्त्री और पुत्र, धन्धा अकेला पाप; धर्म तो नहीं परन्तु वहाँ तो पुण्य भी नहीं। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि कदाचित् पुण्य के परिणाम-शुभराग हुआ। आहाहा ! तो वह पुद्गलपरिणाममय है, पुद्गल के परिणाम हैं। यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि पुद्गल है, वह द्रव्य है, उसके गुण हैं तो उस गुण में पुद्गल का कोई गुण नहीं कि कर्मरूपी पर्याय हो। पर्याय का ही ऐसा स्वभाव है, वह कर्मरूप होती है। भाई ! ए... वजुभाई ! क्या समझ में आया ? यह पर्याय की अवस्था है। जैसे भगवान आत्मा में कोई गुण ऐसा नहीं कि राग हो, विकृत हो—ऐसा कोई गुण नहीं; पर्याय में होता है। आहाहा ! वैसे पुद्गल में कोई ऐसा गुण नहीं कि कर्मरूपी पर्याय हो। पर्याय किसी गुण की होती है न ? आहाहा ! नहीं; वह तो कर्म की पर्याय, पर्याय में, पर्याय से होती है। आहाहा ! ऐसा यहाँ पुद्गलपरिणाममय राग को कहा, तो पुद्गल में ऐसा कोई गुण नहीं कि राग की पर्याय हो, परन्तु राग की पर्याय पुद्गल की पर्याय में स्वतन्त्र होती है; इसलिए उसे पुद्गलपरिणाममय कहा गया है। आहाहा ! ऐसी बात है। कहो, हसमुखभाई ! यह तो निवृत्ति लेकर बराबर अभ्यास करे तो बैठे ऐसा है, बाकी तो धन्धा आदि की मजदूरियाँ करके मर गये सब, आहाहा ! भव हारकर कहीं ढोर में चले जायेंगे कितने ही तो, पशु होंगे बहुत। आहाहा ! अरेरे !

यहाँ तो राग होता है, कहते हैं, उसे अपना माने तो वह मिथ्यादृष्टि। आहाहा ! वह मरकर तिर्यंच में या निगोद में जायेगा। आहाहा ! इसलिए **वह पुद्गलपरिणाममय है इसलिए (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** आत्मद्रव्य से भिन्न है, ऐसा नहीं कहा; आत्मद्रव्य से भिन्न है परन्तु इस भिन्नता का भान कब होता है ? कि यह अनुभूति करे, तब आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, उसका सम्यग्दर्शन करे, उसका सम्यक् अनुभव करे, तब वह द्रव्य में नहीं, वैसे अनुभूति में नहीं, तब इसे ख्याल आता है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं।

वीतराग का मार्ग, आहाहा ! सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर का पन्थ कोई दुनिया से निराला है। आहाहा ! अर्थात् तेरा पन्थ, तेरा मोक्ष का पन्थ ही कोई अलौकिक है। आहाहा ! अभी तो बाहर के शरीर का प्रेम, स्त्री-कुटुम्ब-धन्धे का प्रेम, वह तो महापाप, आहाहा ! शरीर की सुन्दरता को देखकर विस्मय लगे, वह भी महापाप। वह तो जड़ की पर्याय है मिट्टी, हड्डियाँ। इसी प्रकार राग की पर्याय भी यहाँ तो पुद्गलपरिणाममय कही है।

आहाहा! वह पर्याय होने में तो उसका गुण है, वह पर्याय होने में प्रदेशत्व नाम का गुण आकृति होने में पुद्गल में है, परन्तु कर्म की पर्याय होने में कोई गुण नहीं है, आहाहा! तथापि उस पर्याय में विकृतिरूपी कर्म की अवस्था होती है। अब यहाँ तो कर्म की अवस्था में भी अपने तो यहाँ राग की अवस्था सिद्ध करनी है। आहाहा! तो कर्म के परमाणु हैं, उनमें कोई गुण ऐसा नहीं कि रागरूप हो, तथापि उस पर्याय में रागरूप होने का पुद्गल की पर्याय का स्वभाव है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

इस **अनुभूति से भिन्न** है। भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण की चमत्कारिक चीज़ जो है, उसका अनुभव-उसे अनुसरण कर निर्मल पर्याय का होना, भगवान आत्मा को अनुसरण कर सम्यग्दर्शन की पर्याय का होना, उसे अनुसरण कर स्वरूप के आचरणरूप स्थिरता होना, इन तीनों को यहाँ अनुभूति कहते हैं। आहाहा! जिसे अनुभूति हुई, उसे मोक्ष का-सुख का पन्थ आया। सुख के पन्थ में वह दौड़ा। समझ में आया? आहाहा! इसके अतिरिक्त तो जगत् दुःख के पन्थ में दौड़ रहा है। आहाहा!

राग और पुण्य-पाप के भाव को... आहाहा! प्रवचनसार ७७ गाथा में तो ऐसा भी कहा... कल फिर एक आया था न शुभभाव-शुभभाव... अब सुन न कहा! यह पाप के भाव हैं स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब-धन्धे के, वे सब अशुभभाव, इन शुभ और अशुभ दोनों में जरा भी अन्तर माने, शुभ और अशुभ में दोनों में विशेषता माने; एकरूप है—ऐसा न माने और विशेष / अन्तर है, ऐसा माने, प्रवचनसार गाथा ७७ (में) भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं '**हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो।**'-'**मोहसंछण्णो।**' अर्थात्? वह मिथ्यात्व से आच्छादित आत्मा, आहाहा! घोर संसार में भटकेगा। '**हिंडदि**' भाई! यह वीतराग का मार्ग है। ७७ गाथा में उसे कहा था, कल आया था न, एक दाढ़ीवाला। यह सब... उसे कुछ खाना होगा, मुझसे कहा गोचरी करूँ, कोई खिलायेगा? मेरा काम है? यहाँ तो यह उपदेश का है, इसके अतिरिक्त बाकी दुनिया में तुम्हारा क्या हो, उसका यहाँ हमें क्या काम है? उसे ऐसा कि कुछ कहे-प्रेरणा करे। यहाँ यह बात कहाँ? यहाँ तो हजारों लोग आते हैं, बहुत प्रकार के। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि संसार के जितने काम हैं, वे सब पापमय है। सबेरे से उठकर

नहाना और धोना, खाना और चाय पीना और सब साथ बैठाकर प्रसन्न-प्रसन्न आज यह खाया और यह पीया, सब अकेला पाप; उसमें भी कहते हैं कि किसी समय शुभभाव आवे, दया, दान, व्रत आदि का (भाव आवे) परन्तु वह प्रीतिरूप राग तो पुद्गल परिणाम (है) प्रभु! तेरी जाति नहीं; तेरी जाति हो तो अलग पड़े नहीं। अलग पड़े वह तेरा नहीं और तेरा हो वह अलग पड़े नहीं। ये राग के परिणाम यदि तेरे हों तो अलग नहीं पड़ें। इसके ज्ञान-दर्शन आनन्द के परिणाम वे अलग नहीं पड़ते, क्योंकि वे तो इसके गुण की परिणति है। आहाहा! यह क्या कहा? जो आत्मा के गुण हैं ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त, उनके जो परिणाम हैं, वे कहीं अलग नहीं पड़ते, वे तो अभेद हैं। आहाहा! और रागादि परिणाम भिन्न पड़ जाते हैं, सिद्ध में नहीं रहते, केवलज्ञान में नहीं रहते; अरे! अनुभूति में नहीं रहते- यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा... आठ वर्ष की बालिका भी जब अनुभव करे। आहाहा! आत्मा है न? यह तो हड्डियाँ हैं, ये कहाँ आत्मा, ये तो जड़ है। आत्मा जो अन्दर है, अनन्त-अनन्त गुण का चमत्कारिक पदार्थ है। आहाहा! उसके स्वरूप के आश्रय में जहाँ अन्दर जाता है, तब उसे अनुभूति होती है, उस अनुभूति से बालक या आठ वर्ष की बालिका हो, वह अन्दर जानती है कि इस मेरी अनुभूति से राग भिन्न है। इतना सम्यग्दर्शन और अनुभूति का माहात्म्य है। आहाहा! समझ में आया?

इस **अनुभूति से भिन्न है।** पर्याय से भिन्न है - ऐसा कहा। द्रव्य-गुण से भिन्न— ऐसा नहीं कहा। क्या कहा यह? जो राग है, वह अनुभूति से भिन्न है क्योंकि द्रव्य-गुण से भिन्न है, परन्तु द्रव्य-गुण से भिन्न है - ऐसा भान हुए बिना द्रव्य, गुण से भिन्न इसे कहाँ पता है? समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा निजस्वरूप में वास करता है, तब इसे अनुभूति होती है। आहाहा! राग में वास करता है, तब इसे मिथ्यात्व और भ्रम उत्पन्न होता है। आहाहा! यहाँ ऐसा कहते हैं कि इस अनुभूति से भिन्न है। द्रव्य-गुण से भिन्न है - ऐसा नहीं कहा। द्रव्य अर्थात् वस्तु और उसके अनन्त गुण हैं, उनसे भिन्न नहीं कहा। क्यों? है तो उनसे भिन्न, परन्तु उसका भान हुए बिना भिन्न है - ऐसा जाना किसने? लॉजिक से- न्याय से बात समझनी पड़ेगी न इसे। आहाहा! समझ में आया? **भिन्न है।** यह नौ हुआ। नौ (बोल) हुआ न?

अब दसवाँ बोल **जो अप्रीतिरूप द्वेष है, वह सर्व ही जीव का नहीं है...** अन्दर में जो अप्रीति उत्पन्न होती है, बिच्छु काटे, सर्प काटे, निन्दा हो, लोग इसे पसन्द न करें, मान न दें, तब इसे अप्रीति अर्थात् द्वेष का अंश आता है, वह अप्रीति है। वह अप्रीतिरूप द्वेष है। है ? है। आहाहा! यहाँ तो सत्य वस्तु है, छद्मस्थ है, सत्य यह है—ऐसा स्थापित करे, वहाँ भी राग का अंश आता है-ऐसा कहते हैं परन्तु वह अनुभूति से भिन्न है। यह नहीं, यह मिथ्या है,... छद्मस्थ को, हों! केवली को तो कुछ नहीं,... तो वहाँ भी इसे द्वेष का इतना अंश आता है।

श्रोता : अन्य धर्म मिथ्या है - ऐसा कहना वह द्वेष है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं ? यह अन्दर में रागी है, छद्मस्थ है - ऐसा कहा, इसलिए इसे इतना अंश आता है, तथापि वह वस्तु से भिन्न है। आहाहा! केवली को तो वीतरागता है, उन्हें तो दिव्यध्वनि में चाहे जो आवे, वे तो स्वतन्त्र हैं। परन्तु छद्मस्थ है... कर्ता-कर्म (अधिकार) में आता है न भाई! अन्तिम अधिकार, पण्डित जयचन्दजी ने भावार्थ लिखा है, उसमें यह आता है 'कि ज्ञानी को भी, आहाहा! जो सत्य का राग... अभी राग है न ? सत्य का स्थापन करते हुए भी उसे राग का अंश आता है, तथापि वह राग का अंश अनुभूति से भिन्न है। आहाहा! इसलिए ज्ञानी को भी ज्ञान के अनुभव से राग वहाँ आवे परन्तु है भिन्न। आहाहा! इसी प्रकार यह छद्मस्थ है और रागी है न, राग है न इसकी दशा में। इसलिए ऐसा कहा न, जब तक राग है, तब तक इसे अभेददृष्टि कराते हैं।'

आया है न ७ वीं गाथा में-७ वीं गाथा में—परद्रव्य को देखना, उसके कारण राग नहीं है परन्तु रागी प्राणी है, इसलिए भेद से राग होता है। आत्मा दर्शन-ज्ञानमय-चारित्रमय है—ऐसा भेद करे तो रागी है, इसलिए राग होता है। भेद करना, वह राग का कारण नहीं है; भेद तो ज्ञानी-सर्वज्ञ सब जानते हैं परन्तु यह आनन्द है-ज्ञान है—ऐसा भेद करना, वह रागी प्राणी है; इसलिए इसे राग होता है। भेद करने से, रागी है, इसलिए राग होता है। भेद करने से राग हो, तब तो सर्वज्ञ भी भेद को और सबको जानते हैं। समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बात है। भेद, नीचे छद्मस्थ है, वह भेद करने जाता है कि यह दर्शन और ज्ञान और चारित्र, तो रागी है, इसलिए उसे राग होता है। इसलिए उसे जब तक अभेदता

पूर्ण न हो, तब तक भेद का निषेध किया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात बापू! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा!

जो अप्रीतिरूप द्वेष है, वह सर्व ही जीव का नहीं है... तब द्वेष जड़ को है? हाँ; किस अपेक्षा से? कि इसके अनन्त गुण में कोई द्वेषरूप हो—ऐसा कोई गुण नहीं है; इसलिए वे द्वेष के परिणाम इसमें नहीं रहते, इसके हों तो सदा रहे, इसके नहीं; इसलिए वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय है। किसको? आहाहा! यह द्वेष का अंश, अप्रीतिरूप द्वेष, आहाहा! वह जीव को नहीं है। किसे? कि अनुभूति करे उसे। आहाहा! है? **क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** आहाहा! एक ओर ऐसा कहते हैं कि पुण्य-पाप और मिथ्यात्व वे जीव के परिणाम हैं। एक ओर ऐसा कहते हैं कि द्वेष आदि के परिणाम, वे पुद्गल के परिणाम हैं। यह किस अपेक्षा से? वे जीव के परिणाम हैं, वे तो इसकी-जीव की पर्याय में होते हैं, पर के कारण नहीं, पर में नहीं - इतना बतलाने को (कहा है)। अब जब यहाँ आत्मा के अनुभव को बतलाना है, आत्मा के द्रव्य-गुण की शुद्धता को बतलाना है, तब उस शुद्धता के आश्रय से जो अनुभूति हो, उससे ये द्वेष के परिणाम भिन्न हैं; इसलिए उन्हें पुद्गलपरिणाम कहा गया है। आहाहा!

एक ओर ऐसा कहा जाता है कि सम्यग्दृष्टि को, ज्ञानी को, गणधर है, उन्हें भी जितने अंश में राग आता है, उतने अंश में परिणमन उनका है और उसके वे कर्ता हैं। कर्ता अर्थात्? करने योग्य है - ऐसा नहीं। परिणमता है, उतना कर्ता है और जितना परिणमता है, उतना वह भोक्ता है। आहाहा! ऐसी वाणी वीतराग की! एक ओर कहते हैं कि पुद्गल के परिणाम हैं और एक ओर कहते हैं कि गणधर जैसे चार ज्ञान के धनी, चौदह पूर्व और चार ज्ञान जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में प्रगट होते हैं। आहाहा! उन्हें भी वे राग के परिणाम, वह परिणमन उनका है, वे उसके कर्ता हैं, वे पुद्गल के नहीं। आहाहा! (प्रवचनसार ४७) नय में आया है न? भोक्ता है परन्तु उतना दुःखी कहो तो दुःख है। यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द को अनुभव करता है, उसके साथ जरा राग होता है, उसके दुःख को भी अनुभव करता है। यहाँ कहते हैं कि पुद्गल के परिणाम हैं, उसका अनुभव जीव को हो? आहाहा! बापू! क्या अपेक्षा है? ये पुद्गल के परिणाम अनुभूति से भिन्न। जैसे

द्रव्यस्वभाव और गुण में कुछ नहीं, वैसे उसका अनुभव करने से भी वह राग और द्वेष उसमें नहीं है। आहाहा! कितनी अपेक्षाएँ पड़ती हैं! ज्ञान की गम्भीरता है प्रभु! यह तो ज्ञान की गहनता है, वह यहाँ कहते हैं।

गणधर भी जब सत् को रचते हैं और असत् का निषेध करते हैं, तब भी अंश तो अन्दर आता है, तथापि इस अनुभूति की अपेक्षा से, वह द्रव्य-गुण में नहीं है; इसलिए उसका अनुभव होने पर उसमें नहीं है। समझ में आया? आहाहा! इसी प्रकार द्वेष की, पुद्गल की पर्याय... उसके द्रव्य-गुण में ऐसा कोई गुण नहीं कि द्वेषरूपी परिणाम हो, पुद्गल में भी। जैसे यहाँ पर्याय में विकृत होता है, वैसे उसकी पर्याय में कर्म की पर्याय वह विकृत होती है, वह पर्याय का स्वभाव है। आहाहा! किसी द्रव्य-गुण का नहीं। आहाहा! अब ऐसा सब कब याद रखना और पूरे दिन धन्धा-पानी पाप का। आहाहा! कपड़े के धन्धेवाले कपड़ा घुमाते हैं ऐसे.. ऐसे.. और ऐसे, अकेला पाप का पोटला समटते और फैलाते हैं और अमुक अमुक, यह साटम-आटम होता है न? प्रसन्न-प्रसन्न होते हैं, अकेला पाप है। आहाहा! यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि यह पाप है अवश्य, परन्तु जो अपना मानता है, उसमें उसे उसका है, परन्तु जो अनुभव करके पर का माने, वह उसका नहीं। ऐसी बातें हैं। आहाहा! ऐसा जैन धर्म होगा? अभी तक तो भाई! हमें दया पालना, व्रत करना, भक्ति-पूजा... ये सब चौके हसमुखभाई के होंगे? हैं? इनके हैं न? ये चौके इतने सब कहाँ से आ गये कहा? आहाहा! ये वचनामृत के चौके हैं। आहाहा!

अमृतसागर भगवान आत्मा, आहाहा! जिसकी कभी मृत्यु नहीं, इसलिए जीवित ज्योत है। आहाहा! जिसकी चैतन्यधातु, जिसमें परिणति नहीं, ऐसे चैतन्यधातु है। आहाहा! ऐसी चैतन्यधातु का अनुभव करने पर, बाहर से सब ओर से हटकर यह चैतन्य, चैतन्य-चैतन्यधातु जिसने चैतन्य धार रखा है, जिसने चैतन्यस्वभाव धार रखा है, ऐसे चैतन्य के अनुभव में, आहाहा! अनुभूति से वे पुद्गल के-द्वेष के परिणाम भिन्न हैं, उसे भिन्न हैं। जो अपने माने, उससे वे भिन्न नहीं। समझ में आया? अपना मानता है और मुझे उनसे लाभ होता है—ऐसा माननेवाले को पुद्गल के परिणाम नहीं हैं, वे उसके हैं, पर्याय में उसके-मिथ्यादृष्टि के (हैं)। आहाहा! समझ में आया?

अब ऐसा उपदेश। ऐ ई.. हिम्मतभाई! आहाहा! अरे भाई! चौरासी के अवतार कर-करके चूरा निकल गया। बापू! सुना नहीं इसने। ये सब अरबोंपति और करोड़पति बेचारे सब दुःखी हैं, भिखारी हैं। भिखारी माँगते हैं यह दो, यह लाओ और यह लाओ। अनन्त अनन्त आनन्द गुण का धनी प्रभु की माँग नहीं इसे। जिसमें-प्रभु में अनन्त लक्ष्मी पड़ी है। यह तो भिखारी मुझे तो दो करोड़ मिले और पाँच करोड़ मिले और धूल करोड़ मिले, प्रसन्न-प्रसन्न। आहाहा! पैसा पैदा करता हो, उसमें बढ़ जाये दस लाख में बीस लाख मिल जाये तो कहता है आज लापसी करो। किसका? मिथ्यात्व का आँधड़ है वहाँ। आहाहा!

यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं... प्रभु कहे, सन्त कहे वह सब एक ही बात है न? अप्रीतिरूप द्वेष परिणाम प्रभु, जो द्रव्य और गुण का अनुभव करे, उसके वे नहीं हैं। आहाहा! नटुभाई! आहाहा! समझ में आया यह? ऐसी बातें हैं। आहाहा! प्रभु चैतन्यद्रव्य और उसके अनन्त गुण की भिन्नता अनेक प्रकार की चमत्कारिक चीज़, आहाहा! उसके सन्मुख होकर अनुभव करे; राग और निमित्त से विमुख होकर, इसकी अनुभूति की अपेक्षा से वे पुद्गलपरिणाम जड़ के हैं। ऐसी भिन्नता (होने पर) अनुभव में साथ नहीं आये। समझ में आया? अनुभव में तो अनन्त गुण की निर्मल पर्याय आयी। सम्यग्दर्शन में अनन्त गुण की निर्मल पर्याय प्रगट हुई। आहाहा! परन्तु उसमें वह राग प्रगट नहीं हुआ। आहाहा!

ऐसा मार्ग वीतराग का, तीन लोक के नाथ सीमन्धर प्रभु महाविदेह में बिराजमान हैं। उन्होंने कहा हुआ यह सब है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। आहाहा! आठ दिन रहे थे। (वहाँ से) आकर यह कहा—प्रभु का यह सन्देश है। आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर परमात्मा... सीमन्+धर (अर्थात्) अपनी मर्यादा में रहनेवाले। अतीन्द्रिय आनन्द आदि में रहनेवाले प्रभु हैं, राग में नहीं आते, नहीं जाते - ऐसे परमात्मा का यह हुकम है, यह उनकी आज्ञा है। आहाहा! कि जिसने भगवान आत्मा और उसके गुणों का अनुसरण करके जो अनुभव होता है, उस जीव को राग और द्वेष के अंश पुद्गल के हैं, क्योंकि अनुभव में साथ नहीं आये। आहाहा! शशीभाई! ऐसा है। शशी-चन्द्र की कला उघड़ी यह-ऐसा कहते हैं। उसे फिर उसका (द्वेष का) अन्धकार नहीं होता। आहाहा! भगवान

है। आहाहा! अरे रे! इसने अनन्त काल से दरकार नहीं की। जो करने जैसा है, उसका किया नहीं और नहीं करने जैसा करके हैरान होकर मर गया है। आहाहा! यह आया था न उसमें, कलश - २८ कलश में, नहीं? आत्मा को मरणतुल्य कर दिया है, मार डाला है। कहते हैं। मरणतुल्य कर दिया है। जागती ज्योत अनन्त गुण की सत्ता के स्वभाव का सामर्थ्य प्रभु स्वयं, उसे यह राग करूँ और पुण्य करूँ और पाप करूँ और यह करूँ और वह करूँ तो मुझे.. ऐसे कर्ता होकर चैतन्य ज्योत ज्ञातादृष्टा को मरणतुल्य कर दिया है। आहाहा!

श्रोता : आपने तो भिन्न करके बताया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान है न, प्रभु तू! आहाहा! भाई! यह कहीं किसी पक्ष की बात नहीं है; यह तो वस्तु का स्वरूप ही है न, प्रभु! आहाहा! जैनधर्म कोई पक्ष नहीं। आहाहा! यह तो वस्तु ऐसी है - जिनस्वरूप ही प्रभु है, आहाहा! उसे अनुसरण करके जो दशा हो, वह जिनस्वरूपी अनुभूति है। उस अनुभूति में रागादि नहीं आते, इसलिए वे पुद्गल के कहे गये हैं। आहाहा! भाषा तो सादी है परन्तु भाव तो कोई (अलौकिक है)। आहाहा! है? **अनुभूति से भिन्न है।**

(ग्यारहवाँ बोल)—**जो यथार्थ तत्त्व की अप्रतिपत्तिरूप (अप्राप्तिरूप) मोह है..** अब यह मोह-मिथ्यात्व लिया। आहाहा! **यथार्थ तत्त्व की अप्रतिपत्तिरूप (अप्राप्तिरूप)...** भगवान आत्मा की प्राप्ति है, उसकी अप्राप्ति। किसमें? मिथ्यात्वभाव में। मिथ्याश्रद्धा में स्वरूप की अप्राप्ति है - ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। आहाहा! **जो यथार्थ तत्त्व की अप्रतिपत्तिरूप (अप्राप्तिरूप) मोह है...** मिथ्यात्व। **वह सर्व ही जीव का नहीं है...** आहाहा! आहाहा! क्योंकि जीव के स्वभाव में कोई मिथ्यात्व होना, ऐसी कोई शक्ति नहीं है। आहाहा! यह पर्याय में खड़ा किया हुआ, पर के लक्ष्य से-ऐसा जो मोह है, वह जीव (के) द्रव्य-गुण में नहीं है। किसे? कि जीव गुण की पर्याय का अनुभव करे उसे। आहाहा! ऐसे तो धारणा कर रखे कि यह मेरा नहीं, ऐसा तो ग्यारह अंग का ज्ञान अनन्त बार हुआ है। आहाहा!

वाह! यह तत्त्व तो देखो! वह **सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** मिथ्यात्व है, वह पुद्गलद्रव्य के परिणाम हैं, क्योंकि आत्मा का

कोई (ऐसा) गुण नहीं की मिथ्यात्वरूप हो, ऐसा कोई गुण नहीं। आहाहा! वास्तव में तो पुद्गल में भी ऐसा कोई गुण नहीं की कर्म की अवस्थारूप हो। दोनों पर्याय में हैं। आहाहा! गजब बात है! प्रभु का-तीर्थंकर सर्वज्ञ का मार्ग... ओहो! अलौकिक मार्ग है। आहाहा! जिनेश्वरदेव अनन्त तीर्थंकर हो गये, वर्तमान में बिराजते हैं, अनन्त होंगे, उन सबकी कथनी यह है 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' आहाहा! यह मिथ्यात्वभाव **जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** यह तो पुद्गल के साथ अभेद है; जीव के साथ अभेद नहीं। आहाहा! **अनुभूति से भिन्न है।** मिथ्यात्व का भाव, आत्मा का अनुभव करे, तब साथ नहीं आता। अभी तो सम्यग्दर्शन की बात है; आहाहा! इसलिए वह मिथ्यात्वभाव... भाव, हों! वह आत्मा का नहीं। अनुभूति से भिन्न रहता है इसलिए।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)